शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page –12-17

बिरसा मुंडा का 'उलगुलान' और आदिवासी लोक साहित्य

राम चन्द्र &प्रवीण कुमार

Received- 29 may - 2026
Accepted-30 May - 2026
Published– 30June 2026
Corresponding Author-
राम चंद्र, प्रोफेसर,भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्विद्यालय, नई दिल्ली -110067 ई-मेल: ramchandra.jnu@gmail.comमो.: 9968293185
प्रवीण कुमार, सहायक आचार्य , हिंदी विभाग , इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक, मध्य प्रदेश-484887,ई-मेल:pravin.kumar@igntu.ac.in मो.:9752916192
DOI-https://doi.org/10.67275/SU.2026.041404
Funding Policy-
'Shodh Utkarsh' is an independent journal and receives no financial support or grant from any public, commercial, or not-for-profit organization.
वित्त पोषण नीति-
'शोध उत्कर्ष' एक स्वतंत्र पत्रिका है। इसे किसी भी सार्वजनिक, वाणिज्यिक या गैर-लाभकारी संगठन से कोई वित्तीय सहायता, अनुदान या फंडिंग प्राप्त नहीं होती है।
Copyright Notice -
© 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC-BY 4.0).
कॉपीराइट सूचना-
© २०२६ लेखक। यह कार्य क्रिएटिव कॉमन्स अ Attribution 4.0 इंटरनेशनल लाइसेंस (CC-BY 4.0) के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।

OPEN ACCESS
Shodh Utkarsh
CC-BY 4.0

सारांश:
प्रस्तुत शोध आलेख भारतीय जननायक बिरसा मुंडा के संरचनात्मक दृष्टिकोण और आदिवासी लोक साहित्य में व्याप्त उनकी धारणाओं पर आधारित है। बिरसा मुंडा ने कैसेअपनी आलोचनात्मक और रणनीतिक दृष्टियों से औपनिवेशिक शासनसत्ता से आदिवासी समाज को मुक्ति दिलाया और समाज एवं राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दिया। यह आलेख इसी अवधारणा पर आदिवासी लोक में व्याप्त विचारों पर विश्लेषणात्मक चिंतन प्रस्तुत करता है।
बीज शब्द: बिरसा मुंडा, उलगुलान, औपनिवेशिक शासनसत्ता, आदिवासी समाज, आदिवासी लोक साहित्य, मानव मुक्ति, राष्ट्र निर्माण

मूल आलेख:किसी भी व्यक्ति और समाज के निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया में आलोचनात्मक बोध तथा प्रतिरोध की संस्कृति पहला पायदान होता है। रणनीतिक दृष्टिकोण और विद्रोही प्रवृत्ति के कारण ही बिरसा मुंडा जन से जननायक बन गया,और उनका 'उलगुलान' औपनिवेशिक शासन सत्ता व साम्राज्यवाद से मुक्ति का आधार बन गया। जिसका विस्तार भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में होता है। बिरसा मुंडा का व्यक्तित्व संवेदनशील, मानवीय, विशाल वटवृक्ष सा सास्थिर विपरीत परिस्थिति में अनुकूल दृढ़ इच्छा शक्ति रखने वाला और प्रकृतिपरक धर्मपरायण परिवर्तनकामी आंदोलनधर्मी था। कुमार सुरेश सिंह के शब्दों में ''चालीस वर्ष पुराने सरदार-आंदोलन की विफलता के कारण मुंडाओं में जो घोर निराशा, उलझनें और उद्देश्यहीनता के भाव आ गए थे, उस संदर्भ में एक नेता के रूप में बिरसा का उदय और आंदोलन ऐसे आदिवासी आंदोलनों और उनके नेतृत्व के विकास में एक चरण का प्रतीक है। ऐसे आंदोलनों के अपने विशेष प्रतिमान और मूल्य थे। बिरसा न तो पवित्र वैष्णव थे, न पाखण्डी और न ही चालबाज। वे अपने लोगों की भांति एक विद्रोही थे, जो एक उत्तेजक स्थिति के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे।वे एक संवेदनशील, गर्वीले और दृढ़ इच्छा शक्तिशाली व्यक्ति थे।''[1] तत्कालीन व्यवस्था से असहमति और प्रतिरोध की भावना ही बिरसा मुण्डा के आंदोलनधर्मी व्यक्तित्व को नई चेतना प्रदान की; जिस पर चलकर 'सामाजिक परिवर्तन' का आगाज होता है और स्वराज्य-स्वनेतृत्व की धारा 'अपना राज्य-अपना राजा'की क्रांतिकारी चेतना प्रवाहित होती है। आदिवासी जातीयता, संस्कृति-सभ्यता' की अक्षुण्णता प्रकृतिमय जीवन-पद्धति, समाजव्यवस्था, अंधविश्वास, शोषणविहीन समाज, आर्थिक सम्पन्नता हेतु जमीन का स्वामित्व आदि आंदोलनधर्मी जागरूकता और राष्ट्रनिर्माण का प्रयत्न किया गया। भारतीय समाज के इतिहास में बिरसा मुंडा का जन्म सामाजिक परिवर्तन का आगाज है। भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा क्षेत्र में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से पूरी तरह से त्रस्त हो गया था, और भारतीय जमीन पर औपनिवेशिक व्यवस्था के कारण और कुछ यहां के ब्राह्मणवादियों की नीति आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, आत्मनिर्णय, वैज्ञानिक चेतनायुक्त के कारण यहां की जमीन भारत वर्ष की आदिभूमि छिन्न-भिन्न कर दी गई थी, या उसे किया जा रहा था। ''इसका कारण जनजातीय क्षेत्रों में बाहरी लोगों का बड़ी संख्या में पहुंचना था।''2 यह बाहरी लोग दिकू हैं जो गैर आदिवासी हैं, और गैर आदिवासी क्षेत्रों से आये हुए लोग- राजा, जमींदार, जागीरदार, साहूकार, सदान आदि हैं। इन लोगों ने अपनी कुटिल नीति से आदिवासी जातीयता, संस्कृति, रीति-रिवाज, संगठन आदि को नष्ट कर अवशेष में बदलने का काम किया। यह भी विचारणीय है कि औपनिवेशिक साम्राज्यवाद ने ब्राह्मणवादी साम्राज्यवाद के साथ गठजोड़ कर आदिवासी राष्ट्रीयता को खत्म कर दिया।जिसके कारण आदिवासी समाज का शोषण निरंतर और अधिक तीव्र गति से हुआ। ''आदिवासियों पर अंग्रेजों ने अपना शोषण उन गैर आदिवासी, अपेक्षा कृत विकसित राष्ट्रीयताओं के जरिए चलाया जो पहले से ही आदिवासियों का शोषण-उत्पीड़न करती आ रही थी।''[3]

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page –12-17

मुंडाओं की परम्परागत भूमि-व्यवस्था को नष्ट करने के लिए जिम्मेदार बाहरी तत्त्व थे- राजा और उसके संबंधी, जागीरदार और जमींदार, ब्रिटिश शासक और स्थानीय छोटे अफसर। जहां तक भीतरी कारणों का संबंध है जनजातीय संगठन टूट चुका था और जनजातियों के कुछ श्रेणियों के लोगों के चरित्र में व्यापक रूप से गिरावट आई थी। जिसका जिक्र कुमार सुरेश सिंह करते हैं। विचारणीय बात यह है कि इन्हीं दिकुओं की नीति-रीतियों के खिलाफ सामाजिक परिवर्तन और 'उलगुलान' की शुरूआत आदिवासी समाज और क्षेत्रों में होता है। इस विद्रोह और सामाजिक परिवर्तन का आगाज सशस्त्र प्रतिरोध के साथ-साथ सांस्कृतिक-सामाजिक आत्मनिर्णय की आदिवासी राष्ट्रीयता भी रहा है। यह विद्रोह था आदिवासी भू-स्वामियों को भूमिहीन कर देने की पूरी प्रक्रिया का और उस सरकारी नीतियों के खिलाफ जिसके कारण आदिवासी समाज जमीन मालिक से खेत-मजदूर में तब्दील हो रहे थे। यह विद्रोह था गैर आदिवासियों द्वारा आदिवासियों के धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक शोषण के खिलाफ। कुमार सुरेश सिंह इस संदर्भ में लिखते हैं कि दिकुओं का आदिवासियों से व्यवहार करने का तरीका क्या था? जोर-जबर्दस्ती से या अदालतों का निर्णय अपने पक्ष में कराकर आदिवासियों की जमीन हथियाना, जमीन के असल मालिक को गलबहियां दे देना, फिर जमीन पर मालगुजारी लाद देना, मनमाने तौर पर उसे बढ़ाना, रैयतों के साथ भूमि संबंधी शर्तें कड़ी कराना और उनसे खेत में जबरन मेहनत कराना आदि।... मुंडाओं और मानकियों को अपने शिकंजे में जकड़ लिया और निर्दयता, क्रूरता और हिंसा के तरीके अख्तियार कर आदिवासी भू-स्वामियों को अपनी जमीन से निकाल बाहर किया।4 यह स्थिति खत्म नहीं हुई। यह आज भी विद्यमान है। इस पर विचार किया जाना चाहिए क्योंकि इससे शोध का नया अध्याय शुरू होगा और आदिवासी समाज के विकास का 'मॉडल' आदिवासी राष्ट्रीयता के साथ शुरू होगा। आदिवासियों का संघर्ष-आंदोलन औपनिवेशिक शासन सत्ता-व्यवस्था के साथ-साथ देशी सामंती व्यवस्था, सामाजिक वर्चस्व और पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ था। उनके आंदोलन का दो स्वरूप मिलता है - एक स्वयं के नेतृत्व में किया गया आंदोलन और दूसरा देशी राजाओं-जमींदारों यानी गैर आदिवासियों के नेतृत्व में आंदोलन। इसको इस रूप में भी देखा जा सकता है कि सरदार आंदोलन जब अपने नये नेतृत्व की तलाश कर रहा था तो इसका कारण ''1890 के बाद सरदार आंदोलन यूरोपियनों, मिशनरियों और अफसरों के भी विरूद्ध हो गया, क्योंकि सरदारों में संदेह पैदा हो गया था कि उन सब लोगों को उनके उत्पीड़क जमींदारों ने खरीद लिया है। कलकत्ते के बाबुओं(वकीलों) ने भी सरदारों को नीचा दिखाया था, क्योंकि वे उन्हें अपने अधिकार और भूमि दिलाने में बुरी तरह विफल हो रहे थे। सरदारों के अनुसार सभी मिशनरी स्थानीय पदाधिकारियों के साथ मिलकर उनके विरूद्ध षड्यंत्र कर रहे थे। सभी यूरोपियन भी आदिवासियों के विरूद्ध हो गए थे। अब अपनी लड़ाई बिना किसी की सहायता के लड़ने के अलावा उनके सामने कोई रास्ता न बचा था।''5 इससे यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी आंदोलन अपना नेतृत्व तलाश रहे थे, और ऐसे ही समय बिरसा मुंडा का अभ्युदय होता है। जो कि आदिवासी आंदोलन को न केवल एक नया नेतृत्व ही देता है बल्कि आदिवासी समाज में नई चेतना भी पैदा करता है। यह बात आदिवासी समाज खासकर झारखंड के आदिवासी समाज में उनके लोकगीतों में व्याप्त है। [11] इन लोकगीतों में जो नया राजा है वही बिरसा मुंडा है। बिरसा के पूर्वज पूर्ती वंश के थे। पिता सुगना मुंडा का जन्म स्थान उलिहातु था और यही उनका पैतृक मकान और यही उनका खूंटकट्टी गांव था। माता का नाम करमी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा साल्गा गांव में ही हुआ। ईसाई मिशनरी(बुर्जू स्थित जर्मन ईसाई मिशन) में प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा का ही परिणाम था कि ईसाई मिशनरियों की सच्चाई से वे रू-ब-रू हो गए थे, और ईसाई धर्मांतरण के खिलाफ उनका प्रतिरोध का स्वर उभरा। 1890 ई. में चाईबासा छोड़ने के बाद ही बिरसा ने ईसाई मिशन की सदस्यता भी छोड़ दिया। कारण सरदार आंदोलन मिशनरी के विरूद्ध तो था ही, साथ ही बिरसा मुंडा मिशनरियों की सच्चाई से परिचित भी हो गया था। तत्पश्चात वह पुराने आदिवासी धर्म की ओर लौटने की बात थी। इसी दरम्यान संभवतः 1891 में उनकी मुलाकात आनंद पांड़े से हुई। जिसके प्रभाव में आकर उन्हें वैष्णव धर्म की जानकारी प्राप्त हुई। बालक बिरसा के मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाली घटना का उल्लेख करते हुए कुमार सरेश सिंह उनके व्यक्तित्व निर्माण के बारे में लिखा है, जिससे न केवल बिरसा के मिजाज को समझा जा सकता है बल्कि उनकी सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि को भी अच्छी तरह से समझा जा सकता है। ''इन वर्षों में बिरसा के व्यक्तित्व के निर्माण में तीन बातों का मुख्य रूप से प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म ने, जो उसके चारों ओर एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर रहा था, उसके बचपन को एक विशेष सांचे में ढाला और इसके कारण ही उसे अच्छी शिक्षा मिल पाई। बाद में वह जब वैष्णव धर्म के प्रभाव में आया तो ईसाई और वैष्णव धर्म, दोनों के मिश्रित प्रभाव ने उसके धार्मिक आंदोलन को प्रेरित किया। सरदारों के भूमि-संबंधी आंदोलन के अदम्य प्रभाव ने बिरसा को उच्च मिशनरियों से भी भिड़ जाने को मजबूर किया और उसने स्कूल छोड़ दिया। सरदारों का आंदोलन रोमन कैथोलिक आंदोलन के अंतर्गत टेढ़े-मेढ़े रास्ते से आगे बढ़ रहा था। बिरसा ने सरदार आंदोलन का अनुसरण किया और फिर अपने पुराने धर्म की ओर लौट गया तथा आनंद पांड़े से संबंध विच्छेद कर लिया। फिर वह सरदार आंदोलन में, जो जनता के वन-संबंधी अधिकारों की मांगों को लेकर चलाया जा रहा था, कूद पड़ा।''6

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है, कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षा का महत्त्व सर्वोपरि है। यदि बिरसा को शिक्षा न मिली होती तो वह अपने समाज के लोगों, भारत के मूलनिवासियों को औपनिवेशिक शासन सत्ता से मुक्त कराने का क्या वह आंदोलन कर पाता? यहां यह भी देखा जा सकता है कि धर्मांतरण का विषय भी कितना उचित-अनुचित है? यदि ईसाई या वैष्णव, जिसे वर्तमान में हिन्दू धर्म कहकर प्रचारित किया जाता है, मूलनिवासियों (आदिवासियों) के लिए उचित होता तो बिरसा का उससे मोहभंग या संबंध विच्छेद क्यों करता? और सबसे महत्त्वपूर्ण बात सरदार आंदोलन जो कि आदिवासियों का आंदोलन था और जिसका लक्ष्य वन-संबंधी अधिकारों की मांग थी, से बिरसा क्यों जुड़ा? निश्चय ही सरदार आंदोलन आदिवासियों के वन-संबंधी अधिकारों की मांगों को लेकर न था। यह तो उनकी संस्कृति-सभ्यता का सवाल था जिसे तत्कालीन शासन सत्ता के लोगों और उससे जुड़े अन्य गैर आदिवासी तंत्रों ने नष्ट कर अपने में विलीन करने का अभियान चला रखा था, के खिलाफ एक प्रतिरोध की उभरती संस्कृति है। औपनिवेशिक शासन सत्ता और उसके दिकु तंत्र से मुक्ति के आंदोलन को बिरसा ने अपनाया और जननायक के रूप में जनआंदोलन को संगठित रूप में चलाने का प्रयास किया।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page –12-17

इसमें वे बहुत दूर तक सफल रहे और भविष्य के लिए अपनी सभ्यता-संस्कृति और अधिकारों हेतु आदिवासी आंदोलन को पथप्रदर्शित कर गया। इसी आंदोलन का विस्तार और प्रतिफलन राष्ट्रीय आंदोलन भी रहा है; तत्पश्चात झारखण्ड आंदोलन और झारखण्ड राज्य भी। वर्तमान में आदिवासी समाज को अपने जननायक के सामाजिक परिवर्तन की पद्धति-प्रक्रिया से अवगत होना चाहिए। यह उनका इतिहास है और इतिहास भविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। वर्तमान की समस्याओं से मुक्ति का आधार देता है।बिरसा मुंडा के आंदोलन की प्रकृति, आरम्भ में धार्मिक थी लेकिन धीरे-धीरे वह सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक आंदोलन का स्वरूप धारण कर लिया। 1895 ई में उनके द्वारा चलाया गया आंदोलन धार्मिक सुधारों का था, इसी में उनका मसीहा रूप भी मिलता है। लोक प्रचलित मान्यताएं थीं कि बिरसा स्वयं प्रभु का रूप है। पैगम्बर है और वह जनकल्याण के लिए अवतरित हुआ है। इस संदर्भ में लोक में प्रचलित अनेक कहानियां, किस्से आदि मिलते हैं। हकीकत यह है कि बिरसा एक शिक्षित जननायक की तरह लोकमानस में अपनी जगह चाहता था और इसके लिए उन्होंने लोक मनोविज्ञान का पूरा सहारा लिया। शिक्षा से कोसों दूर आदिवासी समाज में अंधविश्वास, अज्ञानता, मंत्र, जादू, टोना-टोटका आदि का प्रचलित होना स्वाभाविक है लेकिन यह वैज्ञानिक चेतना के विकास तथा व्यक्ति-समाज के विकास में बाधक है। यह बात बिरसा को समझ में आ गई थी, परंतु तत्कालीन समाज में धार्मिक विश्वास में ही बिरसा ने उसका उपाय ढूंढ़ा। धार्मिक विश्वास को आधार बनाकर बिरसा ने आदिवासी समाज में जनजागरण का कार्य शुरू किया। जिसका अंत सामाजिक परिवर्तन में निहित था। इसकी परख बिरसा के समकालीन हौफमैन के इस कथन से की जा सकती है:

''मेरे मिशन का केंद्र(सरवदा) चलकद से सिर्फ 9 मील पर था। मैं रोज देश के सभी भागों से उस गांव पहुंचने वाले असंख्य लोगों की कतारें देखता था जो या तो इस नए उपदेशक का धर्म-संदेश सुनने या अपनी चिकित्सा कराने पहुंचते थे। रोग दूर होने में कुछ मामलों में विफलता से ये लोग हतोत्साह न होते थे, क्योंकि वे इसका कारण धरती आबा(पृथ्वी-पिता) यानी बिरसा में रोग हरने की शक्ति का अभाव न मानते थे, बल्कि मानते थे कि बिरसा में निष्ठा और विश्वास की कमी के कारण कुछ लोगों का रोग दूर न हो पाता था।''[7]

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि बिरसा का आंदोलन चाहे वह धार्मिक हो या सामाजिक परिवर्तन का हो, निष्ठा और विश्वास से जनमानस को उसने अपनी तरफ समर्पित रूप से बांध रखा था। इन्हीं जनमानस के विश्वास और निष्ठा का मनोविज्ञान उसे 'धरती आबा' के रूप में स्थापित किया। उपदेशक के रूप में बिरसा ने प्रेतवाद(बोंगाओं) और भगतों, सोखाओं और देवड़ों की पुरोहिती पर तीखा प्रहार किया। बलि-प्रथा का विरोध किया। बिरसा का लोक मनोविज्ञान सामाजिक परिवर्तन की संरचना तैयार करता है जो कि किसी भी आंदोलन की सफलता का सूत्र है। मसीहा का कोई भी रूप 'अंधविश्वास' को खत्म नहीं करता है क्योंकि मसीहा या अवतारवाद की नींव ही अज्ञानता-अंधविश्वास पर खड़ी है। दोनों एक-दूसरे का पूरक है। फिर भला बिरसा अंधविश्वास को क्यों खत्म करता? वास्तविकता यह है कि बिरसा का लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन तथा देशी-विदेशी साम्राज्यवाद से मुक्ति था। इस हेतु उन्होंने 'लोक मनोविज्ञान' का सहारा लिया।

बिरसा मुंडा के आंदोलन की पृष्ठभूमि पूर्व का आदिवासी आंदोलन, सरदार आंदोलन है। आदिवासी आंदोलन सिर्फ औपनिवेशिक शासनसत्ता के खिलाफ ही नहीं था बल्कि वह देशी उपनिवेशवाद, जिसके केन्द्र में ब्राह्मणवादी-पूंजीवाद-साम्राज्यवाद और उसका तंत्र था और वह आज भी है; के भी खिलाफ था। आदिवासी आंदोलन पूर्णतः सामाजिक परिवर्तन पर केन्द्रित था और आज भी है। भारत जैसे देश में सामाजिक परिवर्तन के लिए जिन सामाजिक तत्त्वों में परिवर्तन करना है उनमें से प्रमुख है यहां की भूमि संबंधी कानून में परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधन को पूंजीपतियों की लूट से बचाना तथा उसका समान वितरण। दूसरा है - सामाजिक पूंजी के तत्त्वों में परिवर्तन। जिसके अंतर्गत आता है- वैज्ञानिक शिक्षा की सौर्वभौमिकता एवं प्रौद्योगिक शिक्षा में सभी का प्रशिक्षण तथा सामाजिक संरचना में विद्यमान-वर्ण-जाति की व्यवस्था का अंत और प्राकृतिक धर्म(मनुष्य तत्त्व-जीवन तत्त्व) की स्थापना जिसकी मांग आदिवासी-मूलनिवासी समाज लगातार करता रहा है। बिरसा की नजर में यही आदिवासी धर्म था। तीसरा है - राजनीतिक और शासन-प्रशासन में आदिवासी-मूलनिवासी की भागीदारी एवं नेतृत्व। चौथा है - मनोवैज्ञानिक रूप से जनमानस में उनकी गुलामी से मुक्ति का बीजबपन करना। इसे यूं कह सकते है कि 'गुलामों को उनकी गुलामी का अहसास करा देना।' पांचवां है - संगठित होना और संगठन की विचारधारा एवं लक्ष्य के प्रति निष्ठा एवं ईमानदार बने रहना। छठा है - संगठित होकर संघर्ष करना। बिरसा मुंडा के आंदोलन में सामाजिक परिवर्तन के उन सभी तत्त्वों को एक साथ देखा जा सकता है। 'बिरसा का लक्ष्य था मुंडा राज की वापसी, धार्मिक सुधार, राजनीतिक स्वतंत्रता, मालगुजारी से मुक्ति, शोषकों के विरूद्ध आवाज उठाना और शोषण-मुक्त समाज का निर्माण, जमींदारी प्रथा से मुक्ति, आदिवासी-मूलनिवासियों की भूमि को उनका स्वामित्व दिलाना, 'अबुआ दिशोम रे अबुआ राज'(हमार देश में हमार शासन), नैतिक मूल्यों की अमलदारी, बाह्य हस्तक्षेपों से मुक्ति, आदिवासी अस्मिता-मूल्य-गरिमा की बहाली, हड़िया-शराब जैसे नशीले पदार्थ के सेवन की संस्कृति से मुक्ति, भ्रष्टाचार से मुक्ति, सामाजिक संगठन और संघर्ष हेतु जनजागरण-सभाओं का आयोजन, गुरिल्ला रणनीति, औपनिवेशिक शासनसत्ता से मुक्ति हेतु युवाओं के मनोमस्तिष्क में गुलामी से मुक्ति का अहसास कराना आदि। अपनी बौद्धिक चेतना और लोकमनोविज्ञान के द्वारा बिरसा ने सरदार आंदोलन की पृष्ठभूमि में तैयार युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया और जन-जन में देशी-विदेशी औपनिवेशिक शासनसत्ता की गुलामी से मुक्ति का आंदोलन तैयार किया।उनका यह आंदोलन धार्मिक रूप से जितना 'धरती आबा' के रूप में प्रचलित था उतना ही उनका 'उलगुलान' विशुद्ध सामाजिक परिवर्तन का आंदोलन था। जिसमें पूर्व की सभी समस्याओं को एक साथ नियोजित कर लिया गया था। कुमार सरेश सिंह लिखते हैं कि 'बिरसा आंदोलन सरदारों के भूमि आंदोलन का प्रसार जैसा न था न ही इसके पुनर्जागरणवाद का दूसरा रूप था। बिरसा आंदोलन सरदार आंदोलन से आगे का कदम था।'8 जबकि यह भी सच्चाई है कि बिरसा आंदोलन की पृष्ठभूमि सरदार आंदोलन ही है। जनमानस में बिरसा का जन्म धरती-आबा के रूप में व्याप्त है जो उन्हें उनकी समस्याओं से मुक्त कर नया राज्य-आदिवासी राष्ट्र स्थापित करेगा। इसकी पुष्टि आदिवासी लोकगीतों की इन पंक्तियों से होती है:

''किस भूमि में नए राजा ने जन्म लिया है?
देखो! देखो! आकाश में धूमकेतु उगा है

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page –12-17

चलकद में नए राजा ने अवतार लिया है
पच्छिम में धूमकेतु को देखो
मुंडाओं को उनका खोया राज दिलाने के लिए
धरती को मलेच्छों से स्वच्छ और पवित्र बनाने के लिए
वह उगा है,
नया राजा आया है।''

(बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, पृ. 263)

अर्थात चलकद में सुगना मुंडा के घर नया राजा ने अवतार लिया है। वह आकाश में धूमकेतु की तरह है, जो मुंडाओं को उनका खोया राज्य जो कि देशी-विदेश औपनिवेशिक शासनसत्ता के कारण छीन गई है, को वापिस दिलाएगा। इस धरती को मलेच्छों यानी दिकुओं, जमींदारों, साहुकारों, पंडित-पुरोहित-ब्राह्मणवादी से लेकर ब्रिटिश शासन-प्रशासन और मिशनरियों से मुक्त करके स्वच्छ और पवित्र बनाना है। ध्यान देने वाली बात यह है कि मलेच्छों से मुक्ति में उनकी निष्ठा और विश्वास का भाव है, जो उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग है। पृथ्वी की स्वच्छता और पवित्रता का भाव आदिवासी संस्कृति में ही है; अन्य यानी गैर आदिवासी संस्कृति में तो पृथ्वी के दोहन का भाव ही मिलता है। परिणाम आज आप सबके सामने है कि धरती को खोर-जोत कर जहां आदिवासी समाज ने खुशनुमा जमीन संस्कृति-कृषि, लोक और मानवीय संस्कृति का पौधा लगाया वहीं गैर आदिवासी समाज ने आज उसे खोरकर, उसकी खुदाई कर, उसकी शक्ति को खत्म कर दिया है। धरती की सम्पदा जिसे आवश्यकतानुसार ही आदिवासी समाज उपयोग करता था और अपने जीवन के सौन्दर्य को समृद्ध करता था, उनकी सम्पदा की लूट-पाट गैर आदिवासी समाज ने पैदा कर दिया है। गैर आदिवासी समाज की लूट-खसोट की संस्कृति ने आदिवासी समाज की संस्कृति और जीवन-मूल्यों को ही न केवल लूटा है बल्कि उसे तहस-नहस कर खत्म भी किया है।

इन गैर आदिवासियों को आदिवासी लोकगीतों में 'चीता' और 'सांप' के रूप में रेखांकित किया गया है, जिससे आदिवासी समाज ने अपनी जमीन, अपनी संस्कृति और

अपनी सामाजिक-शासन-प्रशासन-सत्ता को बचाकर ही आदिवासी समाज के जीवन-मूल्यों को संरक्षित किया है। गौरतलब बात यह है कि जिसे बचाने की वर्तमान मुहिम कम पड़ रही है। जिसका एक कारण तो गैर आदिवासी समाज की ब्राह्मणवादी नीति है तो दूसरा कारण सरकार की नीतिगत व्यवस्था। जिसमें एक तरफ ब्राह्मणवादी -पूंजीवादी समूह को संरक्षण मिला हुआ है तो दूसरी ओर विकास का मॉडल जो कि बिलकुल ही आदिवासी समाज से तालमेल नहीं खाता है और न ही विकास के 'मॉडल' को बनाने एवं क्रियान्वयन में आदिवास समाज को शामिल ही किया जाता है। गैर आदिवासी समाज के निहितार्थ निर्मित सरकार की मनसा में आदिवासी-मूलनिवासी समाज के विकास का सवाल ही नहीं उठता है क्योंकि वहां सिर्फ और सिर्फ अपनी वर्गीय चेतना से काम लिया जाता है। जबकि भारतीय संविधान आदिवासी-मूलनिवासी समाज के विकास का न केवल पूरजोर वकालत करता है बल्कि उनकी मानवीय सभ्यता-संस्कृति के विकास हेतु निर्धारित मानवीय संसाधन में उनकी भागीदारी भी सुनिश्चित करता है। आदिवासी-मूलनिवासी संस्कृति और जीवन मूल्यों को भी संरक्षित करने का दायित्व निर्धारित करता है। क्या वर्तमान सरकार की नीति और उसके क्रियान्वयन में ऐसी सामाजिकता देखने को मिलती है? औपनिवेशिक शासनसत्ता में तो हमारा देश बर्बाद हुआ ही था और आजाद भारत में भी देशी औपनिवेशिक शासनसत्ता के कारण आज देश निरुद्देश्य उड़ रहा है, नेस्तनाबूद हो रहा है। इससे बचाने हेतु आज भी आदिवासी समाज बिरसा का आह्वान करता है। आदिवासी लोकगीतों में इसका पूरा आख्यान है। जिस पर चिंतन-मनन और अनुसंधान की जरूरत है। उदाहरण स्वरूप इन लोकगीतों की पंक्तियों को समझा जा सकता है-

''देश बर्बाद हो रहा है
हमारा क्षेत्र पानी की सतह पर बहता हुआ अहसाय कछुए -सा है।
देश आग की लपेट में है।
जैसे कि आग में जलते हुए पेड़ की पत्तियां जली-झुलसी जाती हों
धूल-गर्द भरी सड़क पर चलता हुआ सा
देश नेस्तनाबूद हो रहा है
धूलभरी सड़क के धूलि कणों सा
हमारा देश निरूद्येश्य उड़ रहा है।''

(बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, पृ. 278)

''जमींदारों के दमन से पीड़ित
लोगों की दःख बिपदाएं, असहाय हो उठीं,
देश असहाय और बेसहारा हो गया
आओ, हम झट से धनुष, तीर और कुल्हाड़ी उठा ले
आज जिंदगी से मौत कही अच्छी है।
बिरसा भगवान हमारे नेता है;
वे हमारी रक्षा के लिए धरती पर आए है।
आज...
हमलोग तरकस ,तीर और तलवार लेकर तैयार रहें,
हम डोम्बारी पहाड़ी पर इकट्ठे हों,
धरती के पिता हमें वहां हमारा उद्बोधन करेंगे।
हम बन्दरों से न डरेंगे
हम जमींदारों, साहूकारों और दूकानदारों(विदेशी)
को छोड़ेंगे नहीं।
वे हमारी जमीन हड़प बैठे हैं।
हम अपने खूंटीकटटी अधिकार न छोड़ेंगे
हमने चीतो और सांपों(के जबड़ों) से अपनी
जमीन छीनकर उसे जोता-बोया।
और वह खुशनुमा जमीन उन लोगों ने हमसे छीन ली।''

(बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, पृ. 267)

इन लोकगीतों में हमें बिरसा की 'धरती आबा' का स्वरूप तो मिलता ही है। साथ ही औपनिवेशिक शासनसत्ता से मुक्ति के आंदोलन का प्रतीकात्मक स्वरूप भी मिलता है। आदिवासी-मूलनिवासी समाज के असली दुश्मन कौन हैं? इसकी भी शिनाख्त होती है। बंदर, चीता, सांप आदि शब्द का प्रयोग गैर आदिवासी समाज के लिए हुआ है। यह बिम्ब-प्रतीक निश्चय ही भारतीय साहित्य में अनोखा है। बिम्ब-प्रतीक का यह नवीन अर्थ परंपरा से प्रचलित आदिवासी-मूलनिवासी के प्रति कपोल कल्पित आख्यान का प्रतिकार है। नकार है और भारतीय साहित्य को न केवल समृद्ध ही करता है बल्कि उसका सही स्वरूप भी निर्धारित होता है। इससे यह भी पता चलता है कि औपनिवेशिक शासनसत्ता से मुक्ति आंदोलन में आदिवासी समाज की चेतनशीलता नवजागरण की तीव्र-तीक्ष्ण दृष्टि का परिचायक रहा है। यहां यह भी स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश हुकूमत के साथ-साथ देशी राजा-रजवाड़े, सेठ-साहूकार, जमींदार-ठेकेदार, रंगदार, पुरोहित-पंडा आदि सब आदिवासी-मूलनिवासी समाज के दुश्मन हैं। इनकी 'मनसा' और संस्कृति कैसी है? इसकी भी जानकारी इससे मिलती है कि गैर आदिवासी समाज और औपनिवेशिक शासनसत्ता द्वारा आदिवासी-मूलनिवासी समाज के लोगों को श्रम के बदले शराब और नशीले पेयपदार्थ दिया जाता है जिसके कारण न केवल वह शारीरिक-मानसिक रूप से कमजोर होता है बल्कि उनकी बौद्धिक क्षमता-चेतना भी विक्षिप्त होती है।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page –12-17

इसीलिए बिरसा ने आदिवासी-मूलनिवासी को यह संबोधित करते हुए कहा कि हमारे लोगों को इससे दूर रहना चाहिए, इसके कारण ही हमारे दुश्मन न केवल हम पर हंसते हैं बल्कि हमारी जमीन भी छीन लेते हैं, हमारी बहन-बेटी की आबरू भी लूटते हैं। हमारे परिवार-बच्चे सबके सब भूख से तड़प-तड़पकर जान दे देते हैं। द्रष्टव्य है लोकगीत की ये पंक्तियां:

''बिरसा का आदेश है कि
हँड़िया और शराब न पियो
इससे हमरी जमीन हमसे छिन जाती है।
अधिक मद्यपान और नींद ठीक नहीं।
दुश्मन इस कारण हम पर हंसते हैं,
तुम्हारा परिवार भूख से तड़पता है
तुम्हारे बच्चे रो-रोकर जान देते हैं।''

(बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, पृ. 264 -65)

इस प्रकार बिरसा मुंडा ने आदिवासी-मूलनिवासी समाज को सम्बोधित करते हुए उनमें चेतना की लहर पैदा किया और अपनी नैतिकजीवन-मूल्य को भी संरक्षित करने का प्रयास किया। उनका उपदेश जनमानस में 'धरती आबा' के आप्तवचन की तरह फैलता रहा है। पूरा आदिवासी-मूलनिवासी उनके आंदोलन में संगठित होकर सम्मिलित होने का वचन देता है और पूरी निष्ठा के साथ आजीवन साथ रहने और निभाने का वादा करता है। जनमानस में बिरसा आंदोलन के प्रभाव को उनके उद्बोधनों एवं लोकगीतों में व्याप्त ध्वन्यार्थ से समझा जा सकता है। उदहारणस्वरूप इन लोकगीतों की पंक्तियों को देखा जा सकता है:

''ओ बिरसा, हम एक पंक्ति में खड़े हैं
(चुनौती देती हुई सी) हमारी बांहें आगे बढ़ गई हैं
(प्रतिरोध में) हमारे सीने तन गए हैं।
हमारे हाथों में हथियार चमचमा रहे हैं
ओ बिरसा, हम एक पंक्ति में खड़े हैं।''

(बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, पृ. 269 -70)

इससे स्वतः ही बिरसा मुंडा के आंदोलन में संगठित होने और दुश्मनों की चुनौतियों के खिलाफ प्रतिरोध की संस्कृति की महिम को समझा जा सकता है; वहीं इन ''हम तुम्हारे उपदेश सुनेंगे/तुम्हारा धर्म हमारे साथ रहेगा।हम तुम्हारे पद-चिह्नों पर चलेंगे/तुम धरती के पिता हो, सिर्फ तुम्हीं।... हम तुम्हें आखिर तक न छोड़ेंगे।'' (वही, पृ. 268) इन पंक्तियों से बिरसा मुंडा के आंदोलन के प्रभाव को भी समझा जा सकता है। वर्तमान में आदिवासी-मूलनिवासी समाज को बिरसा मुंडा के आंदोलन के संगठनात्मक स्वरूप और आंदोलन में लोगों की निष्ठा-ईमानदारी को सिखने की जरूरत है। यह दीगर बात होगी कि इन आंदोलनों का जैसा कि संदेश था कि उचित समय आने पर, सही वक्त आने पर सब तरह से तैयार होकर आंदोलन को आगे बढ़ाने की जरूरत है। लोकमनोविज्ञान पद्धति के सहारे से बिरसा मुंडा ने आदिवासी-मूलनिवासी के जेहन को आंदोलन में झोंक दिया था। परिणाम यह था कि सन् 1896-97 में अकाल में भी उनका आंदोलन कमजोर नहीं हुआ। बल्कि जब बिरसा को कैद कर लिया था और हिदायत के बाद उन्हें रिहा कर दिया कि 'अब वह किसी तरह का उपद्रव न करेगा।' लेकिन क्या यह एक आंदोलनकर्मी के लिए संभव था? नहीं, उनका आंदोलन अब गुप्त रूप से गुरिल्ला रणनीति में बाहर से शांत भीतर से विद्रोह की चिंगारी के भीषण चक्रवात के शक्ल में ढल चुका था। नया संगठन और नई रणनीति के साथ। जिसका लक्ष्य सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक मुक्ति एवं स्वशासन-स्वराज्य कायम करना था। जिसका अंतिम लक्ष्य और प्रयोजन था आदिवासी राष्ट्र का निर्माण एवं उसकी स्थापना।इसके लिए आंदोलन का स्वरूप दो प्रबंधनों में विभाजित था। एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रबंधन संगठन था; और दूसरा, राजनीतिक प्रबंधन संगठन था।सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर का प्रबंधन जलमई वाला सोमा मुंडा को दिया गया तो वहीं बोरतोडीह वाले डोंका मुंडा को राजनीतिक स्तर का प्रबंधन दिया गया। 'पैतृक स्थानों की यात्रा' और सभाओं द्वारा संगठन को मजबूत करने का प्रयास किया गया। बिरसा का उपदेश धर्मोपदेशक है लेकिन उसमें 'अबुआ दिशोम रे अबुआ राज' की अवधारणा निहित थी। जो धीरे-धीरे राजनीतिक रूप धारण तो किया ही, उससे बढ़कर सामाजिक परिवर्तन में तब्दील हो गया। इसमें असुर पौराणिक आख्यान की पुनर्व्याख्या, पुरोहितगिरी का अंत, भूत-प्रेत, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, बलि-प्रथा आदि जैसे मनोरोगों, अंधविश्वास-जड़तावादी संस्कृति का अंत था तो नशीले पदार्थों के सेवन को भी खत्म किया। यह दीगर बात है कि कालांतर में यह सब समाज में विद्यमान है। जिस पर आज पुनर्विचार करने की जरूरत है। इसकी पहल भी देखने को मिलता है लेकिन सांस्कृतिक आंदोलन के मद्देनजर इसे खत्म करने की जरूरत है; यदि आदिवासी-मूलनिवासी को आगे बढ़ना है और विकसित होना है तो। बिरसा का धर्म 'धर्ममंत्र' पर आधारित था जिसकी पद्धति 'प्रार्थना' थी। प्रार्थना इस प्रकार की जाती थी-''ओ पिता और माता, पृथ्वी और स्वर्ग के सृजनहार, कठिनाइयों से हमारी रक्षा करो।'' उनकी यह प्रार्थना निश्चय ही मन की पवित्रता और आध्यात्म पर आधारित थी जो प्रकृति में विश्वास, प्रकृति की पूजा, प्रकृति संरक्षण, संतोषप्रद भावना, दुष्टात्माओं से मुक्ति, आदि से लबरेज था। यह प्रार्थना व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपों में प्रचलित था। स्वयं बिरसा द्वारा 'जलेसर', 'डोम्बारी' और 'सिम्बुआ' की पहाड़ियों पर कई सामूहिक प्रार्थनाएं आयोजित की गयीं और उसमें उनका सम्बोधन स्वराज्य की भावनाओं से प्रेरित है। इन प्रार्थनाओं और लोकगीतों में 'सिरमा दिसुम'(स्वर्ग का साम्राज्य), 'ओने दिसुम'(पृथ्वी का राज्य), 'मुरंग राजा' यानी सर्वोच्च सम्राट, नवा राजा अर्थात नया राजा, 'धरम आबा' यानी पवित्र पिता आदि शब्दों एवं पदों की विस्तृत चर्चा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनका उद्देश्य सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-मनोवैज्ञानिक-ऐतिहासिक स्तर पर आदिवासी-मूलनिवासी जीवन-मूल्यों एवं शासनसत्ता की पुनर्स्थापना तथा आदिवासी-मूलनिवासी राष्ट्र का निर्माण था। 'धरती आबा' के रूप में बिरसा का निर्माण या अवतरण होना सिर्फ धार्मिक आंदोलन का आधार न था बल्कि उनका उद्देश्य
दिकु धर्म-ईसाई धर्म और हिंदू धर्म का विरोध और धर्मांतरण को खत्म कर आदिवासी-मूलनिवासी के धर्म की पुनर्स्थापना और पुनर्व्याख्या है। बाद में चलकर यह 'बिरसाधर्म' के नाम से प्रचलित हो गया। इस संदर्भ में कुमार सुरेश सिंह लिखते हैं:

''बिरसा धर्म मुख्यतः पुरातन मूल्यों की पुनर्स्थापना के उद्देश्य से प्रेरित था। इस धर्म का जन्म मुंडा भूमि की मिट्टी-धूल से हुआ था और उसमें उस मिट्टी की सोंधी गंध थी। इसमें संदेह नहीं कि बिरसा धर्म एक सुधारवादी आंदोलन के रूप में शुरू हुआ जिसमें प्रार्थना, ईश्वर और पृथ्वी पर उनके संदेश वाहक(पैगम्बर) के रूप में बिरसा के प्रति निष्ठा, एक आचरण-संहिता का पालन, मद्यपान और बलिदानों का निषेध आदि बातों पर जोर दिया गया था।''[9] यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि बिरसा का धर्म आदिवासी-मूलनिवासी का मूल सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरोत्थान ही था। सांस्कृतिक नवजागरण था। जिसमें समय-सापेक्ष परिवर्तन भी किया गया था। जनमानस और लोकगीतों में बिरसा का 'धरती आबा' के रूप में होना कोई साधारण परिवर्तनकामी धारणा नहीं थी बल्कि तत्कालीन देशकाल और परिस्थिति में आदिवासी समाज को

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page –12-17

मानसिक तौर पर ईसाई मिशनरियों और हिन्दू धर्म के प्रभाव से मुक्त रखना था।उन्होंने एक तरफ उपदेशक के रूप में नीति-कथाओं के माध्यम से आदिवासी-मूलनिवासी लोक में सामंती व्यवस्था, ब्राह्मणवादी व्यवस्था, औपनिवेशिक शासनसत्ता के खिलाफ आंदोलन की अलख जगाया तो दूसरी तरफ अंधविश्वासों, जड़ताओं, रूढ़िवादिता आदि अंधकारमय जीवन से ज्ञान की ओर बढ़ने का अभियान चलाया। इसकी पुष्टि लोकगीतों की इन पंक्तियों से होती है:

''डोम्बारी पहाड़ी पर ढोल पर थाप कौन दे रहा है?
वे (बिरसा अनुयायी) मस्त हो नाच रहे हैं।...
मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए बिरसा ढोल बजा रहे हैं,
बिरसा अनुयायी नाच रहे हैं।...
बिरसा ढोल पर थाप दिए जा रहे हैं।
अनुयायी नाचते चले जाते ह
वे लोग डोम्बारी पहाड़ी पर गरज-गरज कह रहे हैं
यह हमारी मातृभूमि है।'' (वही, पृ. 275)
'गांव-गांव में, झोंपड़ी-झोंपड़ी में,
बिरसा के शब्दों ने वीरता दी और पराक्रम दिया।
बिरसा की वाणी बड़ी मीठी है,
उसका असर दवा का सा होता है,
ओ भाई, इस देश में
ज्ञान प्राप्त करो और तैयार हो जाओ,
अपने को बिरसा के उपदेशों से आभूषित करो।
बिरसा के उपदेश अमृत हैं।...
मुंडा अज्ञानता से भरे हुए हैं,
मुंडाओं के आगे बढ़ने की दौड़ में,
बिरसा के शब्द अनमोल हैं।'' (वही, पृ. 276)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह विचारणीय नहीं है कि क्या आदिवासी समाज धरती आबा के शब्दों से, उनके विचारों से विचलित नहीं हुए हैं? क्या आज भी उनके शब्द अनमोल रह गये है? क्या औपनिवेशिक शासनसत्ता से आदिवासी समाज को मुक्ति मिल गयी है? जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार में, लोक से लेकर परलोक तक, 'धरती आबा' को याद करने वाला आदिवासी समाज भूमंडलीकरण की उपनिवेशवादी संस्कृति का क्या शिकार नहीं हुआ है?

निष्कर्ष : समग्रतः कहा जा सकता है कि बिरसा का जन से जननायक का सफर और उनका 'उलगुलान' सामाजिक वर्चस्व, साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक शासनसत्ता से मुक्ति का आंदोलन था। जिस हेतु उन्होंने 'धरती आबा' का रूप धारण किया। विचारणीय बात यह है कि क्या बिरसा को खुद को ईश्वर का दूत/अवतार घोषित करना उचित था? जबकि यह सत्य है कि मानव के रूप में बिरसा के आंदोलन ने आदिवासी समाज को एक नये जीवन की ओर प्रेरित किया और जननायक के रूप में इतिहास में दर्ज हो गया। उनका 'उलगुलान' भारत में एक क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन था। जिससे आदिवासी ही नहीं भारतीय समाज में औपनिवेशिक और देशी-औपनिवेशिक दोनों साम्राज्यवाद से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ। वर्तमान भूमंडलीकरण साम्राज्यवाद के दौर में आदिवासी-मूलनिवासी समाज की मुक्ति की राह में बिरसा का आंदोलन एक नींव की तरह है। यूं कह सकते हैं कि मानव मुक्ति आंदोलन में आदिवासी-मूलनिवासी का आंदोलन भारत का राष्ट्रीय आंदोलन है जिसका लक्ष्य औपनिवेशिक वर्चस्ववादी शासनसत्ता और साम्राज्यवाद से मुक्ति है। विकास के नाम पर आज भी आदिवासी-मूलनिवासी की जमीं को हथिया लिया जाता है जिसके कारण विस्थापन की समस्याएं एवं मानवीय जीवन का संकट उत्पन्न हुआ है। विकास से विस्थापन की यह कहानी गुलामी की संस्कृति में आदिवासी-मूलनिवासी समाज को तब्दील करने की सुनियोजित कहानी है। ज्ञान से विज्ञान और अहिंसा से बौद्धिक 'उलगुलान' की नींव पर सामाजिक परिवर्तन को अंजाम देने का वक्त है। 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' और 'मिथकीय सांस्कृतिक धारणाओं' को खत्म कर वैज्ञानिक संस्कृति और वैज्ञानिक सांस्कृतिक प्रतीक-बिम्ब के माध्यम से निर्मित चेतना से ही जन से जननायक बने बिरसा मुण्डा का 'उलगुलान' भारतीय इतिहास में न सिर्फ धार्मिक आंदोलन था न ही वह सिर्फ राजनीतिक आंदोलन था बल्कि वह भूमि रिफॉर्म आंदोलन था। मानवीय जीवन और जीवन सौन्दर्य-मूल्य हेतु मानव-मुक्ति आंदोलन था, जिसका लक्ष्य असामनता, विषमता, अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न आदि की कारक कार्य-पद्धति-चिंतनधारा सामाजिक वर्चस्ववादी-पूंजीवादी-औपनिवेशिकशासनसत्ता और साम्राज्यवाद से मुक्त स्वराज्य, सुशासन, समतामूलक, समृद्धशाली-कौशलयुक्त भारत का निर्माण करना था।

****

संदर्भ सूची:

1. कुमार सुरेश सिंह, बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 244
2. वही, पृ. 23
3. वीर भारत तलवार (सं.), झारखंड आंदोलन के दस्तावेज, खण्ड-1, नवारुण, गाजियाबाद, 2017, पृ.66
4. कुमार सुरेश सिंह, वही, पृ. 24
5. वही, पृ. 54
6. वही, पृ. 63
7. उद्धृत, कुमार सुरेश सिंह, वही, पृ. 67
8. वही, पृ. 230
9. वही, पृ. 237

लोकगीत की सभी पंक्तियाँ कुमार सुरेश सिंह की किताब से ली गई हैं।